Artistic Narration Vol. XV No. 1 Jan.-June 2024 ISSN (P): 0976-7444 (e): 2395-7247
Impact Factor 8.898 (SJIF)

प्राचीन भारत में मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियाँः एक अध्ययन

डॉ० मनोज कुमार
ईमेलः manojgbss0@gmail.com

Reference to this paper should be made as follows:

डॉ० मनोज कुमार

प्राचीन भारत में मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियाँ : एक अध्ययन

Artistic Narration 2024, Vol. XV, No. 1, Article No. 9 pp. 53-60

Online available at:
https://anubooks.com/journal-volume/artistic-narration-2024-vol-xv-no1-233

सारांश

प्राचीन भारतीय कला की प्रमुख विधा के रूप में मूर्ति निर्माण कला का विशेष स्थान सिन्धु घाटी सभ्यता से ही देखने को मिलता है। इस कालखण्ड में बड़ी संख्या में मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण किया गया एवं उनमें विविध अलंकरणों को विशेष रूप से प्रयुक्त किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय मूर्ति निर्माण कला सैन्धव सभ्यता के समय से विविध अलंकरण प्रधान रही।

सिन्धु सभ्यता में मुद्राओं तथा मृद्भांडों पर प्राप्त लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं। परन्तु देवी–देवताओं, पशु, पक्षियों, स्तम्भों एवं प्रतीक चिन्हों से यह अनुमान होता है कि उस समय में मूर्ति पूजा की परम्परा थी। पूजा करने से पूर्व संभवतः स्नान भी आवश्यक माना जाता था। मोहनजोदड़ों के इस स्नानगार से यह अनुमान सिद्ध होता है।

मुख्य बिन्दु

अलंकरणों, मूर्तिकला, हडप्पा, पाषाण, प्राचीन कला।

डॉ० मनोज कुमार

सिन्धु–उपत्यका में पाषाण काल का विकास मूर्तिकला का विकास संभावित जानकारी में सहायता प्रदान करता है। सभ्यता के क्षेत्र से 11 मूर्तियाँ प्राप्त हुईं हैं। साथ ही हड़प्पा में टीले की खुदाई से दो छोटी मूर्तियाँ मिली हैं। इन मूर्तियों का केवल मध्य भाग ही सुरक्षित रहा है।

मूर्तिकला के विकास के उत्कृष्ट नमूनों में एक मूर्ति का उल्लेख किया जाना आवश्यक है। इसका कार्य भाग एवं मस्तिष्क का भाग ही सुरक्षित है। इस मूर्ति को उत्तरीय ओढ़े हुये दिखाया गया है। इस पर त्रिफुलिया का अलंकरण हैं। उसमें सिन्दूर रंग भर कर शोभा को बढ़ाया जाता था।[1]

हड़प्पा के अनुरूप सिन्धु घाटी को भी त्रिफुलिया का प्रयोग सेलखड़ी की या उसके मसाले से बनाई गयीं गुरियों पर मिला है। सिर पर सावधानी से काढ़ी गई पटियाँ सामने की ओर पहने हुए 'पात' से जमाई जाती थीं। इस मूर्ति के नेत्र लम्बे, कम चौड़े और अधमुंदे से ही हैं। यद्यपि उसका ललाट छोटा एवं पीछे की ओर ढ़लुआँ सा दिखाई पड़ता है।

सिन्धु घाटी में प्राप्त कुछ दूसरे पाषाण मस्तिष्कों से विविध लक्षण प्राप्त होते हैं। जिनमें आँखों की पच्चीकारी है तथा अन्य शारीरिक लक्षणों को दिखाया गया है।[2]

हड़प्पा में उत्खनन में दो मूर्तियों के रूंड मिले हैं। जिनसे ज्ञात होता है कि हड़प्पा के शिल्पी भी कितनी उत्कृष्ट मूर्तियों को बनाते थे। इन मूर्तियों की सजीव ढ़लाई का कार्य सशक्त है। इनके सिर, हाथ तथा पैर टूटी अवस्था में हैं। एक लालसा तथा दूसरे धुमैले रंग के पत्थर की मूर्ति हैं। एक मूर्ति सामने की ओर कुछ देख रही प्रतीत होती है। इस मूर्ति में उरोभाग एवं पीछे के भाग की ढलाई बड़ी आकर्षक है। उदर का निचला भाग कुछ भारी सा है। गर्दन के ऊपर, कंधों के निचले हिस्सों और जंघा के नीचे इस मूर्ति में छेद हैं। इनमें ये अनेक अवयवों को मूलतः अलग पत्थर के टुकड़ों के बनाकर जोड़ा गया था।[3]

धुमैले रंग के पाशाण की बनी दूसरी मूर्ति नृत्य की मुद्रा में हैं। इसका अधोभाग अलग से बैठाया गया था। भुजाएँ तथा पैर भी एक से अधिक भागों में अलग से जोड़े गए थे। इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों का उतार–चढ़ाव एवं भारी नितम्बों का भाग यह दर्शाता है कि यह स्त्री मूर्ति ही है।

मोहनजोदड़ों से मिली एक नर्तकी की मूर्ति 4.5 इंच की है। यह अत्यन्त आकर्षक तथा भावों से युक्त है। इस मूर्ति में पैरों से निचला हिस्सा टूटा हुआ है। दाहिना हस्त लताहस्त मुद्रा में है। बाहुओं में कटकावली अथवा बंगड़ी भरी गई हैं। इन्हें ऋग्वेद में 'खाद्यः' कहा है। इस मूर्ति का अधोभाग एक ओर झुका हुआ है। मूर्ति के बाल भी घुँघराले हैं। मूर्ति की आँखों का आकार बड़ा है। यह अंधमुदी सी ही हैं। मूर्ति की एक भुजा कूल्हें पर टिकी है। यह रूप अर्द्धावनत जंघा के साथ उत्तेजनात्मक रूप प्रेशित करती है। इस मूर्ति में युवती में सजीवता का भाव है। जो अन्य प्राचीन सभ्यताओं से सर्वथा भिन्न रूप में है।[4]

सैन्धव सभ्यता से प्राप्त नर्तकी की मूर्ति एवं ताँबे से बनी अन्य मूर्तियों की ढलाई से यह पता चलता है कि मधूच्छिष्ट का स्वरूप था। सिन्धु घाटी सभ्यता में ताँबे के द्वारा मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। जिसमें 10 प्रतिशत राँगा मिला कर काँसे के रूप मिश्रित धातु बनाई जाती थी।

सिन्धु घाटी की मानव मूर्तियाँ के मौलिक लक्षण हैं। सुमेर से मिली मूर्तियों में आँखों की आकृति गोल है। परन्तु हड़प्पा में लम्बी तथा अधखुली पलकों से युक्त है।

सिन्धु घाटी सभ्यता में मिट्टी की मूर्तियाँ प्रायः बड़ी संख्या में सर्वत्र प्राप्त हुई हैं। मिट्टी से बनी मूर्तियों को बनाने में लाल रंग की गुथी हुई एवं ठोस पकी गई मिट्टी का प्रयोग होता था। मूर्ति बनाने के

बाद लाल मिट्टी से पोता जाता था और कभी–कभी चटक रंगों का भी प्रयोग होता था। साँचे में ढालकर बनाई गई कई मिट्टी की मूर्तियों के अपवाद को छोड़कर अधिकतर मूर्तियाँ हाथों से ही बनाई जाती थी तथा खोखली भी थीं।[5]

बड़ी संख्या में मिट्टी की मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं –

1. मनुष्य 2. पशु। मनुष्यों की तुलना में पशुओं की मूर्तियों की संख्या अधिक है। 3. नारी मूर्तियों की संख्या पुरूषों से अधिक है। मोहनजोदड़ो में डी. के. क्षेत्र तथा अन्नागार क्षेत्र से पुरुषों की मिट्टी से बनी मूर्तियाँ मिली हैं। इनकी लम्बी नाक, साफ ढोड़ी, पीछे की ओर ढलुआँ रूप में माथा, लम्बी कटावदार आँखें, चिपका सा कटुआ मुख, भौड़ा धड़ आदि विशेषताओं से स्पष्ट करती है कि निर्माण करने वाले; इसमें विशेष रुचि नहीं ली थी। यह मूर्तियाँ या तो धार्मिक या सामान्य सांसारिक मनुष्यों की थीं। कुछ मूर्तियों में सींग भी हैं तथा कुछ सींग वाले मुखौटे या चेहरे भी प्राप्त हुए है। इन्हें साँचों में ढालकर बनाया गया था। इन मूर्तियों की आँखें तिरछी हैं।[6]

नारी मृण्मूर्तियाँ को हड़प्पा, मोहनजोदड़ों चान्हुन्दड़ो आदि स्थलों से प्राप्त किया गया है। हरियाणा के बनावली के अतिरिक्त भारत में राजस्थान, गुजरात आदि सिन्धु सभ्यता के उत्खनन में स्त्री की मृण्मूर्तियों अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं। विभिन्न आभूषणों से सज्जित इन मूर्तियों के होठ तथा नितम्ब आकर्षक बनाए गये हैं। घुटनों से नीचे का भाग प्रायः नग्न हैं। हाथ से बनाई गई इन मिट्टी की मूर्तियों के आकार में वैविध्य है। इनके अंग–प्रत्यंग, आभूषण आदि गीली मिट्टी द्वारा हाथ से बनाए गये हैं। चुटकी का प्रयोग करके दबाकर नाक बनाई गयी है। तृण की सहायता से आँखें एवं मुख बनाए गये हैं। यदाकदा अलग मिट्टी लेकर चिपकाकर आँखें बनाई गयीं हैं। आभूषणों को ऊपर से मिट्टी द्वारा चिपकाकर बनाया गया है। मूर्तियों के गले में कंठहार, कानों में झुमके, कमर में करधनी को अलग से मिट्टी द्वारा चिपकाकर बनाया गया है। मूर्तियों को बनाने के बाद इन्हें धूप में सुखने के बाद इनको आग में पकाया जाता था।

मिट्टी से बनाई गई लगभग तीन चौथाई मूर्तियाँ पशुओं की मिली हैं। इनमें कुकुद्मान, वृषभ विशेष रूप से बनाये गये हैं। किन्तु गाय की एक भी मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है। अन्य पशुओं में हाथी, गैंडा, सुअर, बन्दर, बकरा, भेड़, कछुआ की मूर्ति हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त वृषभ की बलिष्ठ मूर्ति विशेष रूप से उत्कृष्ट है। डील वाले बैल की अपेक्षा बिना डीलवाले बैल की मूर्तियाँ अधिक संख्या बनाई गई हैं। पक्षियों की आकृति में मोर, तोता, कबूतर, मुर्गा, चील तथा उल्लू की मूर्तियाँ मिली हैं। पक्षियों के स्वाभाविक रंगों जैसे ही रंगों से इन्हें रंगने के भी प्रमाण मिले हैं। स्पष्ट है कि सिन्धु घाटी की कला में मूर्ति निर्माण कला का भी विशेष महत्व रहा है।[7]

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में मातृदेवी को उच्च स्थान दिया गया था। अन्य देशों की भाँति भारत में भी मातृदेवी के रूप में देवी–उपासना भी प्राचीन काल से प्रचलित रही थी। सिन्धु सभ्यता के प्रमुख केन्द्रों से मिली मिट्टी की मूर्तियों को विद्वानों ने मातृ देवी की पूजा से सम्बन्धित कहा है। इन्हें डौलिया कर बनाया गया है एवं विभिन्न अंगों तथा आभूषणों को अलग से शरीर पर चिपकाया गया है। देवी का मुँख काफी कुरूप है। यदा कदा मुँख पशु अथवा पक्षी के समान है। देवी का अधो भाग पूर्ण रूप से नग्न है। कटि प्रदेश में चौड़ी मेखला के नीचे तथा घुटने के ऊपर का स्कर्ट के जैसा अधोवस्त्र है। आभूषणों के प्रयोग में कंठहार एवं मेखला प्रमुख है। देवी प्रायः खड़ी स्थिति में हैं। कुछ स्त्री की मिट्टी की मूर्तियों में गर्भिणी रूप तथा मातृत्व के प्रतीक

के रूप में शिशु का चित्रण आकर्षित है। मृण्मूर्तियों को संभवतः धार्मिक उद्देश्य अथवा भेंट के लिए निर्मित किया गया था।

मातृदेवी की इस प्रकार मूर्तियाँ विश्व के अन्य देशों–बलूचिस्तान, ईरान, मेसोपोटामिया, एशिया माइनर, बल्कान, सीरिया, क्रीट, मिश्र आदि से मिली हैं।[1] इस रूप में मातृ देवी की पूजा सिन्धु घाटी से लेकर नील की घाटी व उससे भी आगे तक होती थी। मातृ देवी की मूर्तियाँ सिन्धु घाटी सभ्यता में प्रत्येक घर में दीवारों के आलों में सजाकर पूजी जाती थीं।

सिन्धु घाटी सभ्यता की समाप्ति से लेकर मौर्यों के शासन तक एक हजार से अधिक वर्षों तक कोई कलात्मक कृति नहीं प्राप्त नहीं हुई है। यद्यपि आर्यों के भारत आगमन के बाद भारत की धार्मिक परिस्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। वैदिक काल के आरम्भिक काल में क्या प्रतिमा पूजा का विधान था या नहीं? क्या पूर्ववर्ती आर्य मूर्ति पूजक थे या नहीं? इस विषय पर विद्वानों में काफी मतभेद रहे हैं। मैक्समूलर ने कहा है कि वेदों में मूर्ति का कोई स्थान नहीं था। मैकडानल के अनुसार ऋग्वेद काल में मूर्ति पूजन नहीं होता था।[8]

लेकिन भारतीय विद्वानों का विचार रहा है कि ऋग्वेद काल में मूर्ति निर्माण कला विद्यमान थी। ऋग्वेद के सूक्तों का आधार मानकर इस मत को पुष्ट किया गया है। ऋग्वेद में अग्नि के सहस्त्र आँख तथा पुरुष के सहस्त्र सिर एवं पैरों की कल्पना की गयी है।

''देवा भद्र अमृतबन्धवः।''

गृहसूत्रों में भी अधिक स्पष्ट सन्दर्भ मिलते हैं। पारस्कर गृहसूत्र में कहा गया है कि रथ में बैठा हुआ स्नातक यदि देव मूर्ति की ओर जा रहा है तो वहाँ पहुँचने से पूर्व ही उसे रथ से उतर जाना चाहिए। ऋग्वेद के रूद्र तथा अग्नि देवता का बाद में पूजित देवता के स्वरूप में देखते हैं। उन्हें ही विष्णु अथवा वासुदेव नारायण के रूप में भी माना गया है।[9]

जे0एन0 बनर्जी ने अपनी पुस्तक ''डेवलेपमेंट ऑफ हिन्दू इकोनोग्राफी'' में इस सम्बन्ध में विद्वानों के मतान्तरों को स्पष्ट किया है कि पूर्व वैदिक काल में मूर्ति निर्माण तथा उपासना के प्रश्न को समझने के लिये इंडो–आर्यन लोगों में प्रचलित धर्म के स्वरूप का निरूपण एवं अर्थ जानना आवश्यक है। आर्यों के कुलीन वर्ग में प्रचलित धार्मिक परम्पराओं एवं कर्मकांडों के बारे में पूर्व वैदिक वाड्मय तथा उत्तर वैदिक वाड्मय में पर्याप्त सन्दर्भ मिलते है। बलि देने के साक्ष्य मिलते हैं। परन्तु यह साक्ष्य नहीं मिलते कि क्या देवी–देवता की प्रतिमा के सम्मुख यह बलि दी जाती थी।

उत्तर वैदिक साहित्य विशेष रूप से ब्राह्मण साहित्य में मूर्ति निर्माण एवं आराध्य देवता इन्द्र देव की उपासना के सबल साक्ष्य अवश्य मिलते हैं। जिनके आधार पर यह माना जा सकता है कि उत्तर वैदिक काल में देवों की मूर्ति निर्माण की परम्परा प्रारम्भ हो गयी थी। मिश्र, बेवीलोनिया, यूनान, आदि देशों में ईसा पूर्व मूर्ति पूजन का प्रसार भारत की भांति हो चुका था। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि वैदिक युग के पूरे अन्तराल में कभी न कभी किसी न किसी अंश में मूर्ति पूजा विद्यमान थी। मूर्ति का आधार विभिन्न देवों में विद्यमान भक्ति का अंश था।[10]

ईसा पूर्व दूसरी सदी के विद्वान पतंजलि ने पाणिनि सूत्र की व्याख्या में वासुदेव, स्कन्द, शिव, वि णु का उल्लेख किया है। इनका भाव मूर्ति से ही है। अन्य स्थान पर सूत्र (4/1/4) में पतंजलि ने मूर्ति की

नाक का उल्लेख किया है। पाणिनि ने स्वयं भी 'इवे प्रतिकृतौ' (अष्टाध्यायी) में लिखकर इस विषय को सिद्ध कर दिया है कि मिट्टी या लकड़ी के माध्यम से आकृति का अनुशीलन किया जा सकता है।

सूत्र साहित्य की रचना 800 ईसा पूर्व से 500 ईसा पूर्व के बीच की है। इसमें भी उपासना के विधान का उल्लेख है। सूत्रों में उस समय प्रचलित वैदिक यज्ञों तथा उपासना परम्पराओं का उल्लेख है। इनमें आर्यों द्वारा पूजित देवताओं का ही नहीं अपितु देवियों के भी सन्दर्भ हैं। इस युग की मुख्य देवी अम्बिका हैं। जिन्हें बलिहरण–संस्कार के समय आहुति देने की अनुशंसा बतायी गयी है। सूत्र एवं पालि साहित्य के सन्दर्भों में भी कुछ पुरातात्विक प्रमाण मुख्य रूप से स्त्री–मूर्तियाँ उल्लेख करते हैं। इन मूर्तियों का काल हड़प्पा संस्कृति का आखिरी चरण तथा प्राक् मौर्य काल माना किया गया है। इनमें से धार्मिक प्रयोजनों के कारण बनाई गईं कुछ मृण्मूर्तियाँ सिन्धु–सभ्यता की मृण्मय मातृमूर्तियों से कम या अधिक समानता दिखाई देती हैं। नावदा–टोली, महेश्वर, देवास आदि स्थलों से प्राप्त इन मूर्तियों की मुख्य विशेषता पूर्ण अथवा अर्धनग्न स्वरूप है।[11]

इनाम गाँव (पूना) से मिली 1300–1200 ई. पू. काल की एक बिना मस्तक की मिट्टी की मूर्ति में देवी के साथ वृषभ को भी अंकित किया है। मस्तकविहीन मातृदेवी की कुछ मूर्तियाँ बढ़गाँव (महाराष्ट्र) तथा भीनमाल (राजस्थान) से प्राप्त की गई हैं। प्राक् मौर्यकालीन पुरातात्विक अवशेषों में लौरिया नन्दगढ़ स्तूप से मिला एक स्वर्णपत्र महत्वपूर्ण है। अंकित देवी कातादात्म्य वैदिक देवी पृथ्वी या महामाता से तुलना की गयी है।

अन्य इस प्रकार की स्वर्ण मूर्ति पिपरहवा (सिद्धार्थ नगर) के स्तूप से मिली है। यह ई0पू0 चौथी–तीसरी शती की है। अनुमानतः तत्कालीन समाज में मनुष्य की आत्मा की शान्ति हेतु शव के साथ पृथ्वी देवी के इस प्रकार के चित्रणों को भी गाड़ने की परम्परा रही हो।

भूदेवी या मातृदेवी के ऐसे चित्रण शैषुनाग–नन्द काल की मूर्ति कला में मथुरा, अहिच्छला, कौशाम्बी, राजघाट, तक्षशिला, संकिसा, बलाढ़, पाटिलपुत्र, मुर्तजीगंज (पटना), रोपण से प्राप्त किये गये अनेक गोल चकियों के रूप में मिले है। ये गोल चकियाँ सिन्धु घाटी में बने छल्लों की तरह लगती हैं। यद्यपि इन चकियों का आकार अलग है। ये मातष्देवी या भूदेवी की उपासना से जुड़ी लगती हैं। चकियाँ प्रायः काले, स्लेटी, बैंगनी, अथवा सफेद रंग के बलुआ पत्थर से बनाई गई हैं। कुछ के बीच में चौड़ा छेद एवं कुछ ठोस आकार की हैं। इन चकियों पर उत्कीर्ण की गई देवी के दोनों पैरों को बाहर की ओर मुड़ा दिखाया गया हैं। भुजाएँ सीधी हैं तथा नग्नता दिख रही है। मातष्देवी के अलावा शिवलिंग, नाग, गोधा आदि का चित्रण राजघाट एवं तक्षशिला की कुछ चकियों में मिला है। इन चित्रणों में मातृदेवी का सम्बन्ध ा शैवधर्म से दर्शाया गया हैं।[12]

जैन मत की मूर्तियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से निर्मित होती रही हैं। मौर्य युग से शुंग काल के मध्य बुद्ध की मूर्ति नहीं मिलती। किन्तु जैन धर्म के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। मौर्य युगीन कलात्मक उदाहरणों में लोहानीपुर (पटना) से प्राप्त एक नग्न मूर्ति है। इसके प्रस्तर पर मौर्य स्तम्भ का लेख है। यह मूर्ति की प्राचीनता का परिचय देती है। मूर्ति को जैन धर्म में दिगम्बर की मूर्ति माना गया है।

जैन मूर्तियों में तीर्थंकरों की मूर्तिओं की ही प्रमुखता रही है। जैन धर्म में तीर्थंकरों को अरूप ब्रह्म के साकार रूप में आदर दिया गया है। तीर्थंकर को देवाधिदेव के रूप स्वीकार करके जैन शिल्पियों ने इसे प्रमुख स्थान तथा ऐसे लक्षणों से युक्त किया जो तुलनात्मक रूप में तीर्थंकर की प्रमुखता दर्शाता है।

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में विभिन्न हिन्दू देवी–देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता रहा। इस क्रम में सर्वप्रथम लक्ष्मी की मूर्ति आती है। हिन्दू देव–समूह में सौभाग्य, समृद्धि, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य की अधि ठात्री देवी के रूप में लक्ष्मी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। श्रीलक्ष्मी की मूर्तियाँ लगभग सम्पूर्ण भारत में सब धर्मों में मान्य रही थीं। ऋग्वेद के खिलसूक्त तथा यजुर्वेद के पुरुष सूक्त तथा भारतीय धर्म साहित्य एवं कला के क्षेत्र में, मुद्राओं पर, खिलौनों में देवी के रूप में श्रीलक्ष्मी का उल्लेख तथा अंकन किया गया है। महाभारत तथा पुराणों में इनके सन्दर्भ हैं। श्री लक्ष्मी को एक लोकदेवता के रूप में स्थापित किया गया। इनकी मान्यता ऋग्वेद में रही। तदन्तर वर्तमान काल तक चली आ रही है। लक्ष्मी सभी धर्मों में गृहस्थ जीवन की अधि ठात्री देवी के रूप पूजित रहीं। वर्तमान में भी हैं। भारतीय मूर्ति कला में लक्ष्मी के चित्रण शुंग काल से ही मिलते हैं। इस रूप में शुंग युग के सिक्कों एवं मूर्तियों में लक्ष्मी तथा उनके गजलक्ष्मी स्वरूप को दिखाया गया हैं।

मुद्राओं पर भी लक्ष्मी को उत्कीर्ण किया जाना प्राचीन भारत में भी होता है। उज्जयिनी (ईसा पूर्व द्वितीय शती) से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर वह कमल पर बैठी है। पांचाल शासकों जैसे भद्रघोष और फाल्गुनि मित्र की मुद्राओं में पदम पर खड़ी हुई भद्रा तथा फाल्गुनि देवियाँ का अंकन लक्ष्मी रूप में हैं।[13]

लक्ष्मी के हाथों में पदम का चिन्ह मथुरा के मित्र राजाओं तथा छत्रपों की मुद्राओं पर प्राप्त हुआ है। गजलक्ष्मी का अंकन कौशाम्बी (ईसा पूर्व तृतीय–द्वितीय शती) जनपद की मुद्राओं पर भी उत्कीर्ण हैं।

मूर्तिकला के उदाहरणों में लक्ष्मी एवं गजलक्ष्मी का अंकन भरहुत, सांची, बोधगया, उड़ीसा आदि की बौद्ध तथा जैन कला में भी किया गया है। इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में प्रदर्शित भरहुत की वेदिका स्तम्भ पर अंकित 'सिरिमा देवता' को लक्ष्मी का प्राचीनतम साक्ष्य है। सिरमा देवता निर्माण कला के लावण्य तथा वस्त्राभूषणों के रूप में वेदिका स्तम्भों पर अंकित अन्य पक्षी चुलकोका, महाकोका आदि स्त्री देवताओं से समानता रखते हैं। संभवतया शुंग युग में लक्ष्मी भी यक्षी रूप में बनाई जाती थीं। लक्ष्मी का विकसित रूप भरहुत की अन्य वेदिका–स्तम्भ पर उत्कीर्ण किया गया है।

लक्ष्मी का कमलालया रूप शुंग युग में मिट्टी से बनी मूर्तियों पर भी उत्कीर्ण है। लक्ष्मी की कौशाम्बी से मिली तथा इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित एक ऐसी ही मिट्टी से बनी मूर्ति विशिष्ट है।

मूर्ति के दाएं हाथ में पद्य है तथा बायाँ हाथ कमर पर टिका है। लक्ष्मी की ऐसी ही अन्य मिट्टी से बनी मूर्तियाँ कौशाम्बी, मथुरा, लौरियानन्दगढ़ आदि से मिली है।

शुंग युग में लक्ष्मी अथवा गजलक्ष्मी की प्रतिमाओं का सृजन आकर्षक था। कुषाण युग की मूर्तियों के निर्माण में अन्य देवी–देवताओं के समान लक्ष्मी तथा गजलक्ष्मी की स्वतन्त्र मूर्तियों को बनाया गया। मथुरा से मिली तथा अन्य संग्रहालयों में रखी गई लक्ष्मी तथा गजलक्ष्मी की मूर्तियाँ तत्कालीन मथुरा मूर्ति कला में मान्य आदर्शों के रूप में बनाई गईं। मूर्तियाँ खड़ी तथा आसन दोनों स्थितियों में मिली हैं। उदाहरणार्थ द्विभुजी देवी का दाहिना हस्त कन्धे तक उठकर अभय–मुद्रा में दर्शाया गया है तथा बाँया हाथ पद्य लिए हुए कटि स्थान में रखा है। लक्ष्मी की कुछ अन्य सीनक प्रतिमाऐं मथुरा संग्रहालय में है। बैठी हुई मूर्तियों में राज्य संग्रहालय, लखनऊ में ऐसी ही लक्ष्मी की एक कुषाणकालीन मूर्ति प्रमुख है।

लक्ष्मी के राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में एक आकर्षित मूर्ति प्रदर्शित है। इस मूर्ति में द्विभुजी देवी को पद्मों पर खडा दिखाया गया है। इस मूर्ति में उन्हें कुण्डलों, हारों, केयरों, कंकड़ों, मेखला आदि आभूषणों

से अंलकृत दिखाया गया हैं। मूर्ति की ओर पीछे पुष्प, पत्तियों तथा कलियों से अलंकृत पद्मलता को अंकित किया गया है। यह मूर्ति मथुरा के कुषाण काल के शिल्पियों द्वारा बनाई गई एक मनोहारी कृति है।

गुप्तकाल में भी धन एवं ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी की आराधना की जाती रही। इन मूर्तियों में लक्ष्मी का अभिषेक रूप में मूर्तियाँ स्थानक तथा आसन मुद्राओं में प्राप्त हुई हैं। मथुरा संग्रहालय में कुछ ऐसी ही स्नातक मूर्तियों के द्विभुजी गजलक्ष्मी के एक या दोनों हाथों में पद्म का चिन्ह है। गजलक्ष्मी की मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में स्थानक रूप में विशिष्ट है। मूर्ति में द्विभुजी देवी को समसंग रूप में खड़ी दिखाया गया हैं। मूर्ति के दाहिने हाथ में श्रीफल तथा बांये हाथ में पाश को छिपाया गया है। इस मूर्ति में देवी को केश विन्यास को चूड़ामणि से अलंकृत किया गया है। मूर्ति कुंडलों, हारों जैसे सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। इस रूप में गजलक्ष्मी की मिट्टी की मूर्तियों की परम्परा गुप्तकाल में भी थी। गजलक्ष्मी की एक अन्य मूर्ति देवगढ़ से मिली है। इस गुप्तकालीन मूर्ति में इसका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। बाँया हाथ पद्मधारी मुद्रा में है। गुप्तकाल की एक अन्य गजलक्ष्मी की मूर्ति श्रीनगर में श्री प्रताप सिंह संग्रहालय में प्राप्त है। इसमें देवी के आसन के नीचे उनके वाहन सिंह को दिखाया गया है। इस प्रकार गुप्तकालीन मूर्ति कला में गजलक्ष्मी के वाहन के लिए सिंह को प्रदर्शित किया गया।

सरस्वती की मूर्तियों के लक्ष्मण पुराणों, शिल्प एवं वास्तु शास्त्रों में उपलब्ध हैं। विष्णु पुराण, देवीमहात्म्य, सूत संहिता, वापुपुराण, अग्निपुराण, एवं देवी भागवत पुराण में सरस्वती देवी का सन्दर्भ सरस्वती एवं स्कन्दपुराण में भारती के रूप में प्राप्त है। सरस्वती की एक मूर्ति का वर्णन है। जिसके चार नाम बताए गये हैं– महाविद्या, महावाणी, भारती और सरस्वती। सरस्वती का आरम्भिक मुद्रण शुंग युग में भरहुत की वेदिका स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। जिसमें वीणा के समान एक वाद्य यन्त्र बजाती हुई यक्षी मूर्ति के रूप में किया गया है। इस रूप में सरस्वती भी अन्य देवियों की भाँति यक्षी के रूप में निर्मित की जाती रही।

मथुरा में कंकाली टीले से मिली कुषाणकाल की एक सरस्वती–मूर्ति राज्य संग्राहलय, लखनऊ में प्रदर्शित है। इस मूर्ति में द्विभुजी देवी को पादपीठ पर उत्कूटिकासन–मुद्रा में दिखाया गया है। कन्धे तक उठा हुआ उनका हाथ खंडित है। बायें हाथ में पुस्तक है। देवी का मुख भाग खंडित है। मूर्ति के पादपीठ पर लेख के अनुसार इस मूर्ति का काल शक संवत 54 (त्र 132 ई0) है। इस मूर्ति में सरस्वती का जो प्राचीन रूप दिखाया गया है, उससे ज्ञात होता है कि सरस्वती का भी कुषाण काल में इसी स्वरूप में बनाया जाता होगा।[14]

संदर्भ

1. बनर्जी, जे0एन0. (1957). डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी. कलकत्ता. पृष्ठ **42.**
2. शास्त्री, के0एस0. सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र. हड़प्पा. पृष्ठ **75–76.**
3. अग्रवाल, वासुदेव शरण. (1966). भारतीय कला. वाराणसी. पृष्ठ **25.**
4. बाशम, ए0एल0. (1997). अद्भुत भारत. आगरा. पृष्ठ **06.**
5. पांडे, जयनारायण. (1978). भारतीय कला एवं पुरातत्व. इलाहाबाद. पृष्ठ **26.**
6. श्रीवास्तव, ए0एल0. (2002). भारतीय कला. इलाहाबाद. पृष्ठ **12.**
7. मैके, ई0. (1948). दि इंडस सिविलीनेशन. लंदन. पृष्ठ **97.**
8. मार्शल, जे0. (1931). मोहनजोदड़ो एंड दि इंडस सिविलीजेशन. वा01. लन्दन. पृष्ठ **49–50.**

9. मैकडोनल, ए0जे0. वैदिक माइथोलाजी. पृष्ठ **17—18.**
10. ऋग्वेद. 4/24/10.
11. राव, टी0ए0. गोपीनाथ, प्रथम खण्ड, ऐलीमेंटस ऑफ दि हिन्दू आइकिनोग्राफी. पृष्ठ **05.**
12. मदर गाडेसेस इन इंडियन आर्ट. आर्कियोलाजी एंड लिटिरेचर. पृष्ठ **68.**
13. गुप्ता, सी0सी0 दास. आरीजन एण्ड एवेल्यूशन ऑफ क्लेस्कलचर. पृष्ठ **134.**
14. भट्टाचार्य, एस0एन0. दि इंडियन मदर गाडेस. पृष्ठ **154.**